

‘समकालीन आंचलिक कथा—साहित्य एवं रेणु’**डॉ० रेशू चौहान**

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,

रघुनाथ गर्ल्स स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

सारांश

प्रकृति और मनुष्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अतः मनुष्य के आविर्भाव काल से ही प्रकृति में उसकी लीलायें प्रारम्भ हो गईं। ये लीलायें जितनी पुरातन हैं, उतनी ही आंचलिकता की परम्परा भी। तब केवल आंचलिकता ही आंचलिकता थी, प्रादेशिकता या राष्ट्रीयता नामक तत्व के लिए स्थान ही न था। यदि तत्कालीन रचित कोई साहित्य होता और यदि आज वह उपलब्ध होता तो आंचलिक साहित्य के सुन्दरतम रूप के दर्शन हमें प्राप्त होते। विकास की अग्रिम अवस्था में जबकि अभिव्यक्ति की कला विकसित हुई तब उसका साहित्य भी अंचलों के चित्रों से परिपूर्ण हो गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुरातन स्थापनाओं और मूल्यों पर पुनर्विचार प्रारम्भ हुआ। सन् 1947 में प्राप्त राष्ट्रीय स्वतन्त्रता स्वयं में एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। देश के स्वतन्त्र होते ही एक व्यापक परिवर्तन हिन्दी—साहित्य में भी देखने को मिलता है। प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों ने अपने साहित्य में जिस प्रकार के पात्रों को अभिव्यक्ति दी थी वह स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी चरित्रों में दृष्टिगोचर होती है। इन कथाकारों ने पात्रों के अन्तर्मन की गहराईयों में डूबकर उनके चरित्र को उद्घाटित किया था। प्रस्तुत शोध—पत्र में आंचलिक कथा धारा के उद्घोषक श्री फणीश्वरनाथ रेणु एवं उनके समकालीन कथाकारों के साहित्य की आंचलिकता को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

रेणु के समकालीन यह कथाकार आज के जीवन की उदासीनता, तनाव, सन्देह, विकर्षण, अलगाव, बेगानगी और अजनबीपन आदि को चित्रित कर जीवन की जटिलताओं को रूपायित करते हैं। जीवन मूल्यों के विघटन और जीवन की विसंगतियों से निर्मित एक प्रकार की मानसिकता को इन कथाकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है। व्यक्ति और व्यक्ति के मन को स्पष्ट करने तथा उसके भोगे हुए यथार्थ का चित्रांकन करने की ओर इन कथाकारों ने ध्यान केन्द्रित किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में गोदान की परम्परा को विकसित करते हुए इस युग की समकालीन यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण नागार्जुन (बलचनमा, दुःखमोचन) तथा रेणु (मैला आँचल), परती परिकथा के पात्र करते हैं। बलचनमा को गोबर का विकसित रूप ही कहा जा सकता है। ‘परती परिकथा’ से पूर्व गोदान के बाद के साहित्य की प्रगति मूलतः व्यक्ति चरित्र प्रधान साहित्य का उदाहरण है। प्रेमचन्द ने जहाँ पर आकर चरित्रों का निर्माण करना छोड़ दिया था वहीं से ‘नागार्जुन’, रेणु, अशक और नागर के पात्रों की निर्मिति प्रारम्भ होती है। ‘नागार्जुन’ ने अधिकतर चरित्र प्रधान कथा—साहित्य की ही सृष्टि की। “स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के उपन्यास शिल्प का मेरुदण्ड है चरित्र। ‘नागार्जुन’ के उपन्यास चरित्र प्रधान ही हैं।” ‘बलचनमा’ जिसका प्रकाशन वर्ष सन् 1948 है के द्वारा स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य का सूत्रपात हो गया था। नागार्जुन जनवादी कवि, विरोधी प्रकृति के व्यक्ति, खांटी राजनीतिक लेखक हैं। उनकी रचनाओं को सीमित दृष्टि से कभी आंका नहीं जा सकता। वे भले ही प्रेमचन्द की परम्परा के लेखक हैं लेकिन उनके विद्रोही स्वभाव, राजनीतिक समझ और तो और समाज के प्रति उनका जो समर्पण भाव है उसी के कारण उनके सारे पात्र संघर्ष करते हैं। “बलचनमा” और ‘होरी’ में बस यही अन्तर है कि होरी भारतीय किसान की दुर्बलताओं और अभावों का प्रतीक है जबकि बलचनमा आधा किसान और आधा मजदूर है।”

दुःखमोचन में लोकजीवन के चितरे कथाकार नागार्जुन ने अलग—अलग जातियों और वर्गों में बंटे उस ठेठ देहाती समाज का जीवन्त चित्रण किया है जो अभावों और विवशताओं में जीता है। ‘दुःखमोचन’ एक छोटा परन्तु शक्तिशाली उपन्यास है। इसका नायक दुःखमोचन परती परिकथा के नायक ‘जित्तन’ की तरह जनसेवक है जो योजना की सहायता से गाँव का चहुँमुखी विकास कर रहा है। वह नयी युग चेतना का संवाहक है। अंधरुद्धियों और पुराने संस्कारों से ग्रस्त समाज में बदलाव लाने के लिए वह जो संघर्ष करता है उसे कथाकार ने बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। पीड़ितों और दलितों के मसीहा के रूप में ‘दुःखमोचन’ की भूमिका जहाँ मन में प्रेरणा जगाती है वहीं नित्या बाबू और त्रिजुगी चौधरी जैसे चरित्र फरेबों और कुचक्रों से रोष उत्पन्न करते हैं।

आंचलिक कथाकारों में श्री अमृतलाल नागर का उल्लेख भी उपयुक्त होगा। श्री नागर ने ‘बूँद और समुद्र’ नामक अपनी कृति में लखनऊ के जीवन, वहाँ की भाषा, टोटके और स्थानीयता को अपनी रचना में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित मध्य वर्ग भी आधुनिक मध्य वर्ग का बोध नहीं देता।

रेणु की भाषा-शक्ति की सामर्थ्य नागर जी की भाषा में नहीं है। रेणु ने एक ऐसी भाषा को रचना की है जो पूर्णिया की वास्तविक भाषा न होते हुए भी रेणु के उपन्यासों की अपनी भाषा है, जो ग्रामीण पिछड़ेपन को उजागर करने में समर्थ है। रेणु ने हिन्दी के अनेक स्तरों का प्रयोग किया है, जिनका अधिकांश रूप लेखक की कलात्मक कल्पना से निर्मित है, परन्तु नागर जी हिन्दी की उप-भाषाओं के टकसाली एवं परिनिष्ठित रूप प्रस्तुत करते हैं। कल्याणी शुद्ध वसवाड़ी बोलती है। गोकुल द्वारा के भितरिया जी वगैरह शुद्ध ब्रज बोलते हैं। चौक के मध्यवर्गीय लोगों की भाषा इन सबका मिश्रण है और शिक्षित पात्रों की भाषा अंग्रेजी मिश्रित है। इससे लेखक के विविध भाषा ज्ञान का परिचय तो मिलता है, परन्तु विभिन्न बोलियाँ अपने पृथक-पृथक रूप में चित्रित हैं।

श्री उदयशंकर भट्ट का नाम भी आंचलिक सर्जकों में प्रमुख है। श्री उदयशंकर भट्ट ने बारसोवा की कौली महुआ जनजाति का विस्तृत निरूपण अपने उपन्यास 'सागर-लहरें और मनुष्य' में किया है। लेखक ने इस जाति के लोगों का चित्रण समाजशास्त्रीय ढंग से किया है, तथा मराठी भाषा के स्थान पर बम्बईया हिन्दी का प्रयोग किया है। जीवन की कठोर समस्याओं का भी यहाँ अभाव है तथा उपन्यास नायिका रत्ना का शहरी तड़क-भडक से प्रेरित हो बारसोवा से बम्बई भागना एवं अभिनेत्री की तरह उसका विकास देखकर उसके असफल प्रेमी यशवन्त को समाज सेवा में रत करना अस्वाभाविक एवं कृत्रिम प्रतीत होता है।

भैरवप्रसाद गुप्त की गंगा मैया भी आंचलिक सर्जना की दृष्टि से निर्दोष रचना नहीं है। 'गंगा मया' में लेखक ने 'विधवा विवाह' की समस्या को कथा का मूल बनाया है। इस समस्या द्वारा लेखक ने समाज की मृत परम्पराओं एवं रूढ़ियों का चित्रण किया है। गुप्त जी की मान्यता में मनुष्य को आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न बनाने में सामाजिक रूढ़ियों का शोषण समाप्त हो जायेगा और आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता हेतु हमें प्राकृतिक मनुष्य की आदिम शक्ति को पुनः प्राप्त करना होगा। लेखक ने मटरू, गोपी आदि के माध्यम से नाटकीयता द्वारा विधवा मामी का उद्धार करवाया है। उपन्यास में मटरू की खातिर माँ गंगा का धारा परिवर्तन भी चमत्कारिक लगता है।

हिमांशु श्रीवास्तव के उपन्यास 'नदी फिर बह चली' की एक विशेषता यह है कि इसमें कृषक मजदूरों की अभावपूर्ण जिन्दगी का चित्रण तो है ही साथ ही निम्न वर्ग के लोगों की भी व्यथा की कथा है। दलित विमर्श के साथ नारी विमर्श में भी हिमांशु पीछे नहीं रहे हैं। इन्हे ग्रामीण परिवेश का भी भरपूर अनुभव था अतः इनके प्रमुख उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। 'नदी फिर बह चली' तथा 'लोहे के पंख' में ग्रामीण पात्रों का चित्रांकन सफलता से किया गया है। कृषक एवं मजदूर पात्रों की दुर्दशा सर्वविदित है पर इन कृतियों में उनकी बेबसी का मार्मिक चित्रण किया गया है। 'नदी फिर बह चली' उपन्यास की नायिका के माध्यम से वह नारियों में संघर्ष की चेतना जगाते देखते हैं। उपन्यास की नायिका परबतिया का चरित्र जुझारू एवं संघर्षशील है वस्तुतः 'परबतिया' के रूप में लेखक ने एक ऐसे चरित्र को गढ़ा है जो नारी जाति को नवजागरण का संदेश देते हुए सामाजिक न्याय और मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। 'लोहे के पंख' में दलित कृषि मजदूर कृषक बनने की आकांक्षा संजोता अवश्य है पर बन नहीं पाता अन्ततः रिक्शा चालक बनकर रह जाता है।

श्री रांगेय राघव का नाम हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में गणनीय है। इन्होंने अपनी कृतियों द्वारा आंचलिकता की परम्परा को भी विकसित किया है। उनके 'काका' (1953) 'कब तक पुकारूँ' (1957) और 'विषाद मठ' आदि उपन्यास इस दिशा में दृष्टव्य हैं। रेणु के मैला आँचल के प्रकाशन पूर्व उनका 'काका' ही प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यासों में लेखक ने मथुरा के पण्डों के पेटूपन और उनकी तीर्थयात्रियों तथा यजमानों के साथ की जाने वाली चालबाजियों का चित्रण किया है। इन पण्डों का जीवन अपनी विशिष्टता रखता है इसी कारण ये पण्डे 'मथुरा के चौबे' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी वर्गगत विशेषता इनका भोजन भट्ट होना है। पण्डों के इसी वर्ग के पात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियों का चित्रण उपन्यास में अत्यन्त मार्मिक ढंग से हुआ है। यद्यपि इस उपन्यास की गणना एक विशिष्ट वर्ग के सामाजिक उपन्यासों में की जानी चाहिए तथापि उपन्यास के चरित्र, भाषा-शैली आदि सभी पर गहरा आंचलिक रंग है। "कब तक पुकारूँ रांगेय राघव का आंचलिकता की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें तिरस्कृत करनटों के जीवन की करुण गाथा है।"

रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में राजस्थान और उत्तर प्रदेश की सीमा से जुड़ा 'बैर' ग्रामीण क्षेत्र का वर्णन है। सुखराम इस उपन्यास का नायक है। वह करनट संस्कृति में अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान है जो सामाजिक विसंगतियों के बीच जूझता रहता है। वह बहुमुखी प्रतिभावान व्यक्ति है। निर्बलों के ऊपर होने वाले अत्याचार वह सह नहीं पाता है। कुछ पात्रों को केवल कुप्रवृत्तियों में फँसे रहने के लिए ही रचा गया है। नारी पात्रों में 'प्यारी' और 'कजरी' प्रमुख हैं। 'प्यारी' का चरित्र स्वच्छंद युवती का है वह कई व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध बनाना बुरा नहीं मानती। 'कजरी' का चरित्र भी इसी प्रकार का है। वह 'प्यारी' की सौतन बनकर सुखराम के साथ रहने

लगती है और तरह-तरह के षड्यन्त्र रचकर सौतिया डाह दिखाती है। अन्य स्त्री पात्र भी ऐसे ही हैं। सभी पात्र करनट संस्कृति के हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'रथ के पहिए' और 'ब्रह्मपुत्र' आदि रचनाएँ आंचलिक कृतियों में गणनीय हैं। 'रथ के पहिए' में लेखक ने मध्य प्रदेश के गोंड आदिवासियों का चित्र खींचा है। परन्तु लेखक की दृष्टि रोमानी भाव बोध और आदर्शवाद से अनुप्राणित है। नागरीय आनन्द और सोम नामक पात्रों के ग्राम्य आगमन और स्थानीय समाज में रोटी-बेटी के व्यवहार द्वारा प्राकृतिक सभ्यता का नागरीय सम्मिलन दिखाया गया है। इसी तरह 'ब्रह्मपुत्र' में नदी के तटवासियों असमिया लोगों का चित्र खींचा गया है। ब्रह्मपुत्र नदी के अतिरिक्त इस उपन्यास में और कोई आंचलिक तत्व नहीं है। क्रान्तिकारी राजनीति के समावेश से उपन्यास की सार्वभौमिकता को ही प्रश्रय मिला है और आंचलिक विशिष्टीकरण का अभाव हो गया है। लेखक के दृष्टिकोण में रुमानियत आ जाने से भी अंचल का यथार्थ चित्रण नहीं हो पाता।

रामदरश मिश्र ने अपने उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों का बहुत ही जीवंत चित्र उपस्थित किया है। किस प्रकार गाँव दरिद्रता और तज्जन्य चारित्रिक पतन के शिकार हो रहे हैं तथा किस प्रकार छोटी-छोटी बातें भयंकर कुचक्रों का कारण बन जाती हैं यह उपन्यास में सर्वत्र देखने को मिलता है। "भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश का ग्रामीण अंचल इस उपन्यास में स्वयं मूर्त पात्र रूप में उपस्थित हुआ है। ××× इस उपन्यास में कितने ही जीवंत पात्र अविस्मरणीय होकर उभरे हैं। ये पात्र टूटते हुए मूल्यों और बढ़ती हुई विसंगतियों को उभारते हैं और परिवर्तन की झंझा के पद संचारों का आभास देते हैं। ×× सारी टूटती हुई व्यवस्था को ये पात्र गतिशील जीवन प्रवाह को हृदयंगम करने योग्य रूप देते हैं।"

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी आंचलिक सर्जना के क्षेत्र में अपने कदम उठाए। नाटक एवं कहानीकार लाल ने 'बया का घोंसला' नामक आंचलिक उपन्यास की रचना की। किन्तु क्षेत्रीय भाषा एवं अन्य आंचलिक विशेषताओं को ठोस अभिव्यक्ति का इसमें अभाव है। लेखक ने कृषक जीवन का परिचय तो दिया है, परन्तु उसकी दृष्टि उपन्यास नायिका सुभागी की विवशता एवं दैन्यता पर अधिक रही है। अतः आंचलिकता पूरी तरह उभर नहीं पाई। किन्तु फिर भी इन्हें आंशिक आंचलिक कथाकार कहा जा सकता है।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'जिन्दगीनामा' एक आंचलिक कृति है। इस उपन्यास में समाज के सभी वर्गों का चरित्र एक साथ उपस्थित हुआ है। पंजाब की सांस्कृतिक धरती से लेखिका का गहन आत्मीय रिश्ता है। उपन्यास के मुख्य पात्र 'शाहजी' व 'शाहनी' सबको आशीर्वाद देते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश देते हैं। 'जिन्दगीनामा' में जिन्दगी ही केन्द्रीय चरित्र है। इतिहास, लोककथाएँ, किस्से, किवंदंतियाँ, लोकगीत, दस्तावेज, भावनात्मक अभिव्यक्तियाँ आदि सब इसके केन्द्रीय चरित्र में रंग भरते हैं। "पंजाब के ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का प्रेम, झगड़ा, प्रतिशोध, सौतिया डाह, जमीन जायदाद के सवाल, फौजी जीवन यह सब कुछ इतने सटीक और सजीव ढंग से चित्रित हैं कि इस बात पर आश्चर्य होता है कि साहित्य में मनुष्य के मनोभाव और व्यवहार की छवि इतने करीब से और इतने ठीक से उतारी जा सकती है।"

इसी कड़ी में राही मासूम रजा का उपन्यास 'आधा गाँव' भी मूलतः आंचलिक उपन्यास है। जो उत्तर प्रदेश के गंगोल गाँव (जिला गाजीपुर) के इर्द गिर्द बुना गया है। इस उपन्यास में जहाँ-जहाँ बँटवारे की बात है, पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व भी स्पष्ट हुआ है। इसमें वर्ग भेद की समस्या प्रमुख है। हिन्दु मुस्लिम दोनों धर्मों का वर्णन है तथा जमींदार एवं किसान मजदूरों का चित्रण भी। जमींदार वर्ग के पात्र मजदूरों किसानों का शोषण करते दिखाए गए हैं। स्वयं लेखक ने लिखा है, "जब वह सलीमपुर पहुँचे तो अशरफुल्लाह खाँ किसी आसामी को गाली दे रहे थे। फुन्नन मियाँ को देखते ही उन्होंने गालियाँ देना बन्द कर दिया।" यहाँ अशरफुल्लाह खाँ एक जमींदार है तथा आसामी खेतीहर मजदूर है। इस प्रकार जातीय वर्ग चरित्रों को उभारता यह उपन्यास अद्वितीय है।

उपर्युक्त कथाकारों के अतिरिक्त इस प्रकार के पात्रों की सृष्टि अन्य साहित्यकारों की कथाओं में मिलती है जिनमें 'सच्चिदानन्द धूमकेतू' (माटी की महक), 'जगदीश चन्द्र' (धरती धन न अपना) आदि प्रमुख हैं।

आंचलिकता के क्षेत्र में अन्य रचनाकारों के मध्य रेणु दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति दिखाई देते हैं। श्री निर्मल वर्मा ने रेणु की आंचलिकता की महत्ता को स्पष्ट करते हुए लिखा है— "रेणु का स्थान यदि अपने पूर्ववर्ती और समकालीन आंचलिक कथाकारों से अलग और विशिष्ट है तो वह इसमें है कि आंचलिक उनका सिर्फ परिवेश था, उसके भीतर बहती जीवनधारा स्वयं अपने अंचल की सीमाओं का उल्लंघन करती थी। रेणु का महत्व उनकी आंचलिकता में नहीं,

आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है। बिहार के एक छोटे भूखण्ड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तरी भारत के किसान की नियत रेखा को उजागर किया था।" रेणु ने व्यक्ति सत्य के स्थान पर व्यापक सत्य को ही अभिव्यंजित किया है। अतः उनके पात्र और परिवेश केवल बिहार राज्य के पूर्णिया क्षेत्र को ही व्यक्त नहीं करते अपितु उनके माध्यम से भारतवर्ष के ग्राम्य जीवन की सच्ची तस्वीर उभरकर सामने आती है।

रेणु ने अंचल के भूगोल का ही चित्रण किया हो यह बात नहीं है। वह अंचल को पात्रों के स्वभाव में ढालकर उसे अभिव्यक्ति देते हैं। 'लाल पान की बेगम' में बिरजू की माँ, मखनीफुआ, जंगी की पुतोहू आदि अपनी स्वभावगत विशिष्टता के कारण विशिष्ट अंचल की माटी की गन्ध को फैलाती हैं। बिरजू की माँ की मेला में नाच देखने की इच्छा और उस इच्छा पूर्ति में आने वाली मानसी बाधायें, तज्जन्य क्रोध, ग्लानि, ईर्ष्या के मध्य से कथासूत्र विस्तार पाते हुए इच्छा पूर्ति हेतु प्रस्थान के साथ चरम परिणति को पहुँचता है। यहाँ बिरजू की माँ का चरित्र उभरकर सामने नहीं आया है, अपितु पूर्णिया अंचल के ग्रामवासियों की जीवन चर्या, अभाव और दैन्यता में गुजरते हुए उनके दिनों की व्यथा-कथा तथा आशा-निराशा के मध्य झूलते हुए उनके जीवन को रेणु ने वाणी प्रदान की है। छोटी सी घटनायें उनके मन पर हर्ष और विषाद के कैसे-कैसे चित्र बनाती हैं, भोले ग्राम्य निवासी क्षणिक रुष्ट, क्षणिक तुष्ट होकर कैसे जीवन व्यतीत करते हैं, और दो शकरकन्दों में बिरजू और चम्पिया किस तरह स्वर्गीय सुख लूटते हैं, तथा बिरजू की माँ गाड़ी पर बैठकर किस तरह लाल पान की बेगम बन जाती है, इसका विस्तृत वर्णन रेणु ने प्रस्तुत कहानी में किया है।

मैला आँचल की कथात्मक संरचना अलग प्रकार की है। इसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चलने वाले अनेक पात्र हैं। इस उपन्यास में कोई एक नायक या मुख्य पात्र नहीं है। विद्वानों ने बार-बार कहा है कि इसमें अंचल विशेष ही नायक है। "समूह के इस चरित्र विश्लेषण की व्यापकता को लेकर श्री रेणु ने अपने उपन्यासों की सृष्टि की है। मिथला का मैला आँचल उसकी कथा का विषय है।" इसमें कई प्रकार के सामाजिक एवं राजनीतिक चरित्र दर्शाए गए हैं। इन सबकी अपनी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ हैं जो इनके आपसी सम्बन्धों के कारण परिवर्तनशील हैं। रामकिरण पाल सिंह और शिव शक्कर सिंह राजपूत टोले के मुखिया हैं। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, कायस्थ टोले के और खेलावन सिंह यादव, यादव टोले के मुखिया हैं। इनमें से तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद को रेणु ने कुछ अधिक महत्ता प्रदान की है क्योंकि वे 'कमली' के पिता तथा कांग्रेस पार्टी के सदस्य हैं। इनके अतिरिक्त राजनीतिक चरित्रों में बलदेव, कालीचरण और बावनदास जैसे चरित्र भी हैं। ये चरित्र आजादी के संघर्ष से लेकर आजादी मिलने तक की राजनीति का चित्र बहुत ही गहराई एवं तटस्थता से प्रस्तुत करते हैं। रेणु जी ने उपन्यास में छोटी-छोटी घटनाओं से भी अपने औपन्यासिक चरित्रों की विशेषताओं को उभारा है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद सिंह का चारित्रिक परिवर्तन भी कथाकार ने पूर्ण कुशलता से किया है। वह पहले तहसीलदार के रूप में एक घृणित चरित्र हैं जो संथालों से गलत तरीके से जमीन हड़प लेते हैं तो बाद में पुत्री, नाती के मोहपाश में बँधने के कारण मोहक रूप में भी दिखायी पड़ते हैं। डॉ० प्रशान्त का चरित्र वर्णन भी उत्कृष्ट है। वह लोकसेवक है इसलिए अपनी प्रेमिका कमली की नाराजगी की परवाह भी नहीं करता परिणामस्वरूप अपनी इसी प्रगतिशीलता के कारण उसे जेल भी जाना पड़ता है। इसी प्रकार 'लक्ष्मी' का चरित्र भी है। वह महंत सेवादास की दासिन थी बाद में नए महंत रामदास ने भी उसे अपनी दासिन बनाना चाहा जिसका उसने जोरदार विरोध करना चाहा। वह बालदेव के साथ बाद में पत्नी की तरह से रहने लगती है।

मैला आँचल में अनेक घटनाओं और पात्रों से बनने वाली एक ऐसी कथा है जो अपने आप में नवीन प्रयोगों से भरी हुई है। इस उपन्यास में कहानी के पात्रों के माध्यम से यह दर्शाने की कोशिश की गई है कि मनुष्य को अपने आसपास की घटनाओं में अपनी जिम्मेदारी का परिचय देना चाहिए।

रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' की चर्चा भी अत्यावश्यक है। 'मैला आँचल' के बाद रेणु का यह दूसरा आंचलिक उपन्यास है। मैला आँचल में रेणु ने जिन नई राजनैतिक ताकतों का उभार दिखाते हुए सत्ताधर चरित्रों के नैतिक पतन का खाका खींचा था वह प्रक्रिया 'परती परिकथा' उपन्यास में पूर्ण होती है। इसका नायक 'जितन' परती जमीन को खेती लायक बनाने के लिए कुत्सित राजनीति का अनुभव लेकर और साथ ही उसका शिकार होकर परानपुर लौटता है। 'परती परिकथा' पात्रों का अजायबघर है किन्तु नगण्य पात्र भी अपना व्यक्तित्व लेकर प्रस्तुत हुए हैं। जितेन्द्र और ताजमनी प्रधान पात्र हैं तथा अन्य पात्र भी उपन्यास की विभिन्न दशाओं के प्रतीक बनकर उभरे हैं। हर छोटे पात्र को लेखक ने व्यक्तित्व दिया है। 'जितेन्द्र' लेखक की आशावादी विचारों का प्रवक्ता है। इस उपन्यास में भी सामूहिक चरित्र सृष्टि ही दृष्टिगोचर होते हैं। उपन्यासकार रेणु अपने उपन्यासों में व्यक्ति-चरित्र नहीं वरन् चरित्रों का सामूहिक अंकन करने में सफल रहे हैं। नागार्जुन वर्ग चरित्र निर्मिति करते हुए भी व्यक्ति चरित्र तक ही सीमित रहे जबकि रेणु ने सामूहिक चरित्रों का निर्माण किया।

डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में— “फणीश्वरनाथ के उपन्यास ही सभी अर्थों में आंचलिक हैं। सत्य तो यह है कि ‘मैला आंचल’ और ‘परती परिकथा’ में ग्राम्य अंचलों के जितने विशद और सबाक् चित्र देखने को मिलते हैं उतने अन्य तथाकथित अंचलों में नहीं।” रेणु के उपन्यासों में चित्रण की समग्रता एवं विशिष्टता की सराहना डॉ० विनयमोहन शर्मा ने भी की है।

अपनी प्रथम कृति ‘मैला आंचल’ के प्रकाशन से उन्होंने हिन्दी कथा जगत को आंचलिकता नामक नामकरण प्रदान किया, परन्तु आंचलिकता जैसा कोई वाद चलाने की मंशा रेणु की नहीं थी। अर्थात् रेणु आंचलिकता के नाम से किसी मत या वाद को प्रारम्भ नहीं करना चाहते थे और रेणु की आंचलिकता के पीछे न तो किसी “साहित्यिक वाद या आन्दोलन को चलाने की मंशा थी और न चौकाने की किशोर मानसिकता। यह तो उपन्यासकार की ओर से एक स्पष्टीकरण मात्र था जिसे आन्दोलन या वाद पीड़ित लोगों ने लोक लिया।” उन्होंने अपनी कहानियों में आंचलिक कथा—विन्यास एवं पात्र संघटना को प्रस्तुत किया है, ‘रसप्रिया’ में अपनी ग्रामीण जीवन की विवशताओं से आक्रान्त हो पूर्णिया और सहरसा के अंचल में नाम कमाने वाला मिरदंगिया अब विद्यापति के नाम को ढोता फिरता है। विद्यापति नाच और रसप्रिया गान कभी जनप्रिय अवश्य था पर अब उसके अवशेष रूप में मिरदंगिया अधपगले के सम्बोधन को प्राप्त कर असफल और दगाबाज प्रेमी के रूप में घूमता दिखाई देता है। वस्तुतः मिरदंगिया के रूप में वह अंचल अपनी करुण व्यथा कर रहा है जो विद्यापति नाम की गौरव-गरिमा से युक्त था, पर समय के फेर से दुर्भाग्य को ढो रहा है, अभिशप्त जीवन जी रहा है।

‘भित्ति चित्र की मयूरी’ की फूलपत्ती चित्र की मयूरी की तरह अपनी धरती और जड़ों से अलग नहीं होना चाहती। लेखक उसकी धरती और परिवेश को चित्र की पृष्ठभूमि की तरह अंकित करता है जिसमें से न तो मयूरी को ही अलग निकाला जा सकता है और न उसमें से निकाल कर उसके अस्तित्व की कोई सार्थकता रह सकती है। परिणामतः कथाकार उस धरती को ही लोक कला और लोक संस्कृति के केन्द्र में परिवर्तित कर ‘मधुबनी आर्ट सेण्टर’ की स्थापना कराने पर विवश होता है।

‘एक आदिम रात्रि की महक’ का कथानायक करमा नये पक्के ईंट चूने के मकान में सोकर भी संधाल परगना के नाम पर पुलकित हो उठता है। उसे सरसतिया के अन नहाये जवान शरीर की गन्ध अपने में समूचा डुबो लेती है, जिसके बाद वार्निश और चूने की गन्ध लगती ही नहीं। वह एक ऐसे शोषण का शिकार है, जिसके विषय में स्वयं अपरिचित है। सरसतिया का बूढ़ा बाप ‘पेट माधोचन्द’ कहकर उस पर ताना करता है, और केवल उदर-शोषण कर दूसरों की सेवा करने वाला मूर्ख करमा पर व्यंग्य कसता है। पर व्यंग्य बाणों के बाद आज भी हजारों करमा हमारे समाज में जीवित हैं जो अपनी मूर्खता और अज्ञानता का फल भोग रहे हैं।

‘सिरपंचमी का सगुन’ कहानी भी सिंघाय नामक पात्र के हल का फाल टेड़ा कर देने को आधार बनाकर सिरपंचमी के दिन कृषि कार्य के मुहूर्त का ग्राम्य जीवन में महत्व प्रतिपादित करती है। उस पर्व की महत्ता, पूजा विधि आदि का विस्तृत वर्णन कथाकार ने किया है।

उपरोक्त आंचलिकता प्रधान कहानियों में ‘आंचलिकता’ कथानक पर अपना अधिकार ग्रहण करती दिखाई देती है। लेकिन कथानक का आधार आंचलिक होते हुये भी पात्रों का व्यक्तित्व विनष्ट नहीं होने पाया, न ही घटनाओं के वर्णन में व्यवधान आया है। ‘रसप्रिया’ ‘तीसरी कसम’ और ‘आदिम रात्रि की महक’ नामक कहानियों में आंचलिकता का प्राधान्य होने पर भी आंचलिकता से अलग प्रेम कथा के रूप में इनका प्रभाव दृष्टव्य है। आंचलिकता के आग्रह में इनका प्रेम सम्बन्ध ढकता नहीं है, वरन् आंचलिकता इसे निखारती ही है। भोले और भले ग्रामीण प्रेम की अक्षुण्य स्मृति मानस में छोड़ने में यह कहानियाँ सक्षम हैं।

आंचलिकता के अतिरिक्त अन्य कहानियों में कथानक भिन्न-भिन्न रूपों में उभर कर सामने आये हैं। राज रैना ने शहरी जीवन की कहानियों के कथानक को भी अंचल की परिधि में आबद्ध करना चाहा है— “जिस कहानी में उन्होंने शहर का कथानक लिया है वहाँ भी कथा सिमटकर एक अंचल मात्र रह जाती है।”

रेणु ने अपने साहित्य और जीवन द्वारा साहित्य और समाज को नई दिशा दी। अपने जीवन और साहित्य द्वारा रेणु सताये, शोषित, पीड़ित जनता के सुखों और दुःखों की कहानियाँ कहते हुए उनके अधिकारों के लिए संघर्ष का चित्र उपस्थित किया। एक कथाकार के रूप में उन्होंने भाषा, शिल्प एवं विषयवस्तु इन तीनों दृष्टियों से एक नये साहित्यिक रुझान की शुरुआत की। रेणु का मूल्यांकन एक साहित्यकार के रूप में ही नहीं किया जाना चाहिए। चीजों को घटित होते ही देखना और उसे रचनात्मकता के सांचे में कलम के सहारे ढाल देना, सिर्फ इतना ही करके

चुप बैठ जाने का नाम रेणु नहीं था। रेणु नाम था— एक क्रान्ति-धर्मा व्यक्तित्व का, जिसका समग्र जीवन क्रान्तिमय था।

आंचलिक उपन्यासों की इस विधा का सूत्रपात यद्यपि रेणु से पूर्व ही हो चुका था किन्तु एक धारा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय रेणु को ही प्राप्त है। डॉ० शम्भूनारायण के मत में— “हिन्दी में आंचलिकता को प्रवृत्ति के रूप में स्थापित करने वाले उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु हैं।” डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त के मत में— “आंचलिक उपन्यासों के वास्तविक जन्मदाता फणीश्वरनाथ रेणु, जिन्होंने बिहार के जन-जीवन से सम्बन्धित दो उपन्यास ‘मैला आँचल’ और ‘परती परिकथा’ लिखकर आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित कर दी।”

रेणु से पूर्व हिन्दी साहित्य में आंचलिकता की प्रवृत्ति का विकास हो चुका था। इस दिशा में नागार्जुन, देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ० रांगेय राघव आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यँ तो प्रेमचन्द की कृतियों में ही ग्राम्य जीवन का विषद चित्रण प्राप्त होता है परन्तु प्रेमचन्द और रेणु के ग्राम्य चित्रण में मौलिक अन्तर है। प्रेमचन्द में ग्राम्य जीवन साधन रूप में प्रयुक्त हुआ है तो रेणु में साध्य के रूप में। नागार्जुन की कृतियों में आंचलिकता अपने प्रौढ़ स्वरूप को प्राप्त करती है परन्तु आंचलिक कथावस्तु की जैसी औपन्यासिक कथानक के रूप में परिकल्पना रेणु ने अपने ‘मैला आँचल’ में की है वैसी पहले नहीं की जा सकी थी।” डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट ने भी नागार्जुन के उपन्यासों की इस कमजोरी को लक्ष्य करते हुए निष्कर्षित: यह कहा कि “हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नागार्जुन का कवि तगड़ा है।” वस्तुतः विचारधारा प्रदर्शन के मोह में तथा कुछ उपन्यासों के उभार के कारण नागार्जुन की कृतियों में आंचलिकता दब गई है।

इस दृष्टि से अन्य रचनाकारों की रचनाओं के साथ रेणु की कृतियों की समीक्षा करने पर हम पाते हैं कि रेणु की रचनाओं में जो सजीवता, जीवंतता, सप्राणता प्राप्त होती है वह उनकी अपनी सूक्ष्म संवेदना से उपजी है। उनसे पूर्व के कथा-साहित्य में आंचलिकता की धारा का स्वतन्त्र मूल्यांकन देखने को नहीं मिलता है। ‘मैला आँचल’ से पूर्व हिन्दी कथा-साहित्य में आंचलिक चरित्रों की अभिव्यक्ति सीमित मात्रा में ही थी किन्तु रेणु ने अपने कथात्मक उत्तम चरित्रों के माध्यम से इसका पष्कार एवं सूत्रपात किया। श्री फणीश्वरनाथ रेणु ऐसे प्रथम आंचलिक कथाकार हैं जिनका साहित्य हिन्दी आंचलिक कथाधारा में मील का पत्थर है।

1. राज रैना, कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ 68-69
2. डॉ० शम्भूनारायण सिंह— मूल्य और उपलब्धि, पृष्ठ 190
3. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त— साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ 309
4. डॉ० शीलकुमारी अग्रवाल— हिन्दी उपन्यासों में कल्पना के बदलते हुए प्रतिरूप, पृष्ठ 48
5. डॉ० प्र०च० भट्ट— नागार्जुन : जीवन और साहित्य, पृष्ठ 299
6. डॉ० नगेन्द्र— हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 686
7. डॉ० नगेन्द्र— हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 686
8. नया प्रतीक, जून 1977
9. आधा गाँव— राही मासूम रजा— पृष्ठ 147
10. श्री फणीश्वरनाथ रेणु— ऋणजल-धनजल में संकलित श्री निर्मल वर्मा का लेख—समग्र मानवीय दृष्टि, पृष्ठ 18
11. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य— डॉ० बेचन, पृष्ठ 42
12. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना— डॉ० अमर सिंह जगराम लोधा, पृष्ठ 339
13. अपनी माटी— ई पत्रिका— किसान विशेषांक, अप्रैल, 2017